INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENTIFIC INFORMATION

www.jsiinternational.com **ISSN: 2583-8512**

Research Article

गुमनाम नायिकाएँ: भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उपेक्षित महिला सेनानियों और उनके संगठनात्मक योगदान का पुनर्मूल्यांकन

Saroj Bala, Jaswant Singh and Amit Chamoli

Department of History, Jayoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur, Rajasthan

Corresponding Author: Saroj Bala
skharb300@gmail.com

Article Received on: 14/01/25; Revised on: 22/01/25; Approved for publication: 14/02/25

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में जहाँ प्रमुख रूप से पुरुष नेताओं की गाथाएँ उभरकर सामने आई हैं, वहीं महिलाओं का योगदान अपेक्षाकृत उपेक्षित रहा है। अनेक महिलाएँ बिना किसी पद या मान्यता के स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहीं, लेकिन उन्हें केवल "सहयोगी" के रूप में चित्रित किया गया। उषा मेहता ने गुप्त रेडियो के माध्यम से जनचेतना फैलाने का जोखिम उठाया, भगिनी निवेदिता ने महिला शिक्षा और सांस्कृतिक जागरण में भूमिका निभाई, और मदालसा रॉय ने कम्युनिस्ट आंदोलन के माध्यम से मजदूर महिलाओं को संगठित किया। इसी तरह भारत माता समिति और महिला कांग्रेस जैसे संगठनों ने महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक रूप से जागरूक करने का कार्य किया। ग्रामीण महिलाएँ प्रत्यक्ष विरोध जैसे कर न देना, जंगल कानून तोड़ना, आदि आंदोलनों में सक्रिय रहीं, जबकि शहरी महिलाएँ सभाओं, रैलियों और संगठनों के माध्यम से आंदोलन से जुड़ीं। उन्हें सामाजिक तिरस्कार का सामना भी करना पड़ा, फिर भी उन्होंने बाल विवाह, स्त्री शिक्षा और सामाजिक असमानताओं के खिलाफ आवाज उठाई। इतिहास लेखन में अब भी कई शोध अंतराल बने हुए हैं—जैसे गुमनाम महिला नेताओं के नेतृत्व का अभाव, संगठनात्मक दस्तावेजों की अनुपलब्धता, और क्षेत्रीय (विशेषतः पूर्वोत्तर और दक्षिण भारत) महिलाओं की उपेक्षा। निष्कर्षतः, इन गुमनाम नायिकाओं और संगठनों के योगदान का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। उनका संघर्ष स्वतंत्रता की बुनियाद है, और उसे आज की पीढ़ी तक पहुँचाना इतिहास के प्रति ईमानदारी और सामाजिक न्याय का कार्य है।

संकेत शब्द – स्वतंत्रता संग्राम, महहला नेतृत्व, सांस्कृततक राष्रवाद

1. परिचय

1.1 गुमनाम महिला सेनानियों की ऐतिहासिक उपेक्षा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास जब भी लिखा और पढ़ा जाता है, तो उसमें मुख्य रूप से पुरुष नेताओं की गाथाएँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह जैसे पुरुष सेनानियों के योगदान को विस्तार से वर्णित किया गया है। उनके नेतृत्व, बलिदान और रणनीति पर अनेक पुस्तकें, लेख और शोध कार्य मौजूद हैं। लेकिन जब हम महिलाओं की भागीदारी की बात करते हैं, तो तस्वीर बहुत अलग नजर आती है। महिलाओं का उल्लेख अक्सर सतही रूप में किया जाता है — जैसे वे केवल पुरुष नेताओं की सहायक थीं या सामाजिक आंदोलनों में सीमित योगदान देती थीं[i]। इस तरह का चित्रण न केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अनुचित है, बल्कि यह उस वास्तविकता को भी अनदेखा करता है जिसमें हजारों महिलाओं ने साहस और आत्मबल से स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भागीदारी निभाई।[ii]

इन महिलाओं में से अनेक ने बिना किसी सरकारी पद, संगठनात्मक शक्ति या सामाजिक पहचान के देश की आज़ादी के लिए संघर्ष किया[iii]। वे किसी राजनीतिक मंच पर नहीं थीं, फिर भी उन्होंने क्रांतिकारियों को आश्रय दिया, गुप्त सूचनाएँ पहुँचाईं, विदेशी कपड़ों की होली जलाई, ब्रिटिश विरोधी सभाओं का आयोजन किया, और यहाँ तक कि अंग्रेजों की नजरबंदी और अत्याचार भी झेले। बहुत सी महिलाओं ने तो जेल की सजा भी काटी, अपने परिवार और बच्चों की परवाह किए बिना देश की सेवा को सर्वोपरि माना। लेकिन इतिहास की मुख्यधारा में उनकी कहानियाँ अक्सर हाशिए पर डाल दी गईं।

इतिहास में इस प्रकार की उपेक्षा केवल घटनाओं का अभाव नहीं, बल्कि एक गहरी संरचनात्मक समस्या को दर्शाती है — जहाँ इतिहास लेखन की प्रक्रिया स्वयं पितृसत्तात्मक सोच से प्रभावित रही है। इतिहासकारों ने महिलाओं की भागीदारी को दोयम दर्जे पर रखा और अक्सर उन्हें केवल "सहयोगी", "पत्नी", "बहन", या "प्रेरणा स्रोत" के रूप में प्रस्तुत किया, जबकि वे स्वतंत्र रूप से आंदोलनकारी और नेता भी थीं[iv]।

उदाहरण के तौर पर उषा मेहता, जिनकी भूमिका 'किताबों में' सिर्फ एक गुप्त रेडियो स्टेशन चलाने तक सीमित की जाती है, वास्तव में अंग्रेजों की नींव हिला देने वाले भूमिगत आंदोलनों का नेतृत्व कर रही थीं। भगिनी निवेदिता को महज स्वामी विवेकानंद की अनुयायी के रूप में याद किया जाता है, जबकि उन्होंने बंगाल के क्रांतिकारियों को संगठित करने और

महिलाओं को शिक्षा से जोड़ने में अहम भूमिका निभाई। इसी तरह, कई क्षेत्रीय महिला सेनानियाँ थीं, जिनकी कहानियाँ अब भी दस्तावेज़ों में सुसुप्त अवस्था में दबी पड़ी हैं[v]।

इतिहास में महिलाओं की ऐसी ऐतिहासिक उपेक्षा यह स्पष्ट संकेत देती है कि अब समय आ गया है जब इन गुमनाम नायिकाओं को पहचान दिलाई जाए। यह केवल उनके सम्मान की बात नहीं है, बल्कि यह स्वतंत्रता संग्राम की सम्पूर्ण और सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करने की नैतिक जिम्मेदारी भी है। इन महिलाओं के योगदान को उजागर करना, न केवल इतिहास के प्रति ईमानदारी होगी, बल्कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को यह सिखाएगा कि आज़ादी का संघर्ष केवल कुछ नामों तक सीमित नहीं था — यह एक जनांदोलन था, जिसमें हर वर्ग, हर क्षेत्र और हर लिंग के लोगों ने अपनी भूमिका निभाई[vi]।

इसलिए यह ऐतिहासिक असंतुलन आज के शोधकर्ताओं, इतिहासकारों और शिक्षाविदों के लिए एक स्पष्ट आह्वान है कि वे महिलाओं के योगदान को केवल समर्थन या प्रेरणा तक सीमित न रखें, बल्कि उन्हें स्वतंत्रता संग्राम की पूर्ण भागीदार के रूप में अध्ययन करें, दस्तावेजीकृत करें और जनमानस में पुनर्स्थापित करें। यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी उन गुमनाम महिला सेनानियों को, जिन्होंने राष्ट्र के लिए अपने जीवन का बलिदान दिया, लेकिन जिनकी कहानियाँ अब भी इतिहास के पन्नों में अपनी जगह तलाश रही हैं।[vii]

2. महिला सेनानियों की गुमनाम कहानियाँ

2.1 उषा मेहता – स्वतंत्रता की गूंज बनकर उभरी एक नायिका

उषा मेहता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की उन वीरांगनाओं में से एक थीं, जिनका योगदान यद्यपि अत्यंत प्रभावशाली और साहसिक था, फिर भी उन्हें इतिहास में वह स्थान नहीं मिला जिसकी वे वास्तव में हकदार थीं। उनका जीवन एक ऐसे युग में घटित हुआ, जहाँ नारी को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करना आसान नहीं था, विशेषकर तब जब वह ब्रिटिश शासन के खिलाफ सक्रिय संघर्ष की बात हो।

2.1.1 प्रारंभिक जीवन और राष्ट्रप्रेम की जागृति

उषा मेहता का जन्म 25 मार्च 1920 को गुजरात के सूरत में हुआ था। उनके पिता एक न्यायिक अधिकारी थे और ब्रिटिश सरकार में कार्यरत थे। परिवार शिक्षित और प्रतिष्ठित था, लेकिन उषा की राष्ट्रभक्ति बचपन से ही स्पष्ट थी। उन्होंने बाल्यकाल में ही विदेशी शासन के प्रति अस्वीकार भाव को आत्मसात कर लिया था। जब वे मात्र आठ वर्ष की थीं, तब उन्होंने पहली बार महात्मा गांधी को देखा और तभी से उनमें देशभक्ति की भावना जागृत हो गई[viii]।

उन्होंने न केवल अपने मन में स्वराज्य का सपना संजोया, बल्कि उस दिशा में कार्य करना भी प्रारंभ कर दिया। बचपन में ही उन्होंने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया, अंग्रेजी स्कूल छोड़ दिया और खादी पहनने लगीं। उनका मानना था कि असली देशभक्ति केवल भाषणों में नहीं, बल्कि कर्म में दिखती है।

2.1.2 भारत छोड़ो आंदोलन और गुप्त रेडियो का संचालन

सन् 1942 में जब महात्मा गांधी ने "भारत छोड़ो" आंदोलन की घोषणा की, तब देश भर में स्वतंत्रता की ज्वाला तेज़ी से फैलने लगी। इसी समय उषा मेहता ने अपने असाधारण साहस का परिचय दिया। उन्होंने समझ लिया था कि ब्रिटिश सरकार द्वारा आंदोलन को दबाने के प्रयासों के बीच एक स्वतंत्र संचार माध्यम की सख्त आवश्यकता है[ix]।

इसलिए उन्होंने अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ मिलकर एक गुप्त रेडियो स्टेशन की स्थापना की, जिसे "कॉन्ग्रेस रेडियो" के नाम से जाना गया। यह रेडियो स्टेशन 14 अगस्त 1942 से चालू हुआ और 3 महीनों तक लगातार प्रसारण करता रहा। इस रेडियो सेवा के माध्यम से सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ जन-चेतना फैलाई गई, स्वतंत्रता सेनानियों के सन्देश देशभर में प्रसारित किए गए, और आम जनता को आंदोलन की वास्तविक स्थिति से अवगत कराया गया।

इस रेडियो स्टेशन का संचालन करना अत्यंत जोखिम भरा कार्य था। इसे छुपाकर चलाना पड़ता था, क्योंकि अंग्रेज सरकार इसकी खोज में लगी रहती थी। बार-बार स्थान बदलना पड़ता था, तकनीकी सीमाओं के बावजूद प्रसारण को नियमित बनाए रखना होता था, और अंग्रेजी शासन की निगाहों से बचते हुए देशवासियों तक सच्चाई पहुँचानी होती थी।

2.1.3 गिरफ्तारी और यातना

अंततः ब्रिटिश सरकार को इस गुप्त रेडियो स्टेशन का पता चल गया। 12 नवंबर 1942 को उषा मेहता को उनके साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के बाद उन्हें ब्रिटिश अधिकारियों ने कठोर मानसिक और शारीरिक यातनाएं दीं[x]। उनसे लगातार पूछताछ की गई, रेडियो नेटवर्क के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्हें बार-बार प्रताड़ित किया गया, परंतु उन्होंने अपने साथियों का नाम नहीं बताया और न ही कोई गुप्त सूचना साझा की।

उनकी दृढ़ता और निष्ठा देखते ही बनती थी। उन्हें जेल में 4 साल तक रखा गया और कारावास के दौरान भी उन्होंने अपने साहस और संकल्प को कमजोर नहीं होने दिया। उनकी इस अद्वितीय नारी शक्ति और आत्मबल की आज भी सराहना होती है, परन्तु दुर्भाग्यवश यह सराहना सीमित दायरे में रह गई।

2.1.4 स्वतंत्रता के बाद की उपेक्षा

भारत की स्वतंत्रता के बाद, जब नए भारत के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई, तब अनेक नेताओं और सेनानियों को सम्मान, पदक और संस्मरणों में स्थान मिला[xi]। लेकिन उषा मेहता का नाम उन चर्चाओं में अपेक्षाकृत गौण रहा। उन्होंने न कोई राजनैतिक लाभ लिया, न कोई पद प्राप्त किया, और न ही स्वयं को महिमामंडित करने का प्रयास किया। वे सादा जीवन जीती रहीं और शिक्षण व सामाजिक कार्यों में लगी रहीं।

वे गांधीवादी आदर्शों पर जीवन भर चलीं और स्वतंत्रता संग्राम को अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मानती रहीं। 1998 में भारत सरकार ने उन्हें "पद्म विभूषण" से सम्मानित किया, जो कि उनके योगदान के लिए बहुत देरी से मिला एक औपचारिक स्वीकार था।

उषा मेहता का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक अद्वितीय अध्याय है। उनका साहस, नेतृत्व और संचार माध्यम के रूप में रेडियो का रचनात्मक उपयोग एक ऐतिहासिक मिसाल है। वे उन विरले सेनानियों में थीं जिन्होंने तकनीक का उपयोग ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रभावशाली ढंग से किया। उनका जीवन यह सिद्ध करता है कि नारी केवल पीछे से समर्थन करने वाली शक्ति नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष नेतृत्व करने वाली शक्ति भी हो सकती है। आज आवश्यकता है कि ऐसे गुमनाम नायकों और नायिकाओं के जीवन को स्कूलों, विश्वविद्यालयों, और सार्वजनिक विमर्श में समुचित स्थान मिले। उषा मेहता का नाम केवल इतिहास की एक पंक्ति तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि वह नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बनना चाहिए – साहस, संकल्प और निःस्वार्थ राष्ट्रसेवा का प्रतीक बनकर।

2.2 भगिनी निवेदिता (मार्गरिट एलिज़ाबेथ नोबल) – भारत माता की गोद में समर्पित एक विदेशी नारी

भगिनी निवेदिता, जिनका मूल नाम मार्गरिट एलिज़ाबेथ नोबल था, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के इतिहास में एक विलक्षण स्थान रखती हैं। एक आयरिश मूल की शिक्षिका, लेखिका और समाजसेविका होने के बावजूद, उन्होंने अपनी पहचान, संस्कृति और आरामदायक जीवन को त्याग कर भारत को अपनाया — न केवल भौगोलिक रूप से, बल्कि आत्मिक और सांस्कृतिक रूप से भी। वे उस युग की प्रतीक थीं जहाँ "विदेशी" होते हुए भी कोई भारत माता की सेवा में अपने प्राण अर्पित कर सकता था।

2.2.1 प्रारंभिक जीवन और विवेकानंद से भेंट

मार्गरिट नोबल का जन्म 28 अक्टूबर 1867 को आयरलैंड के डंडाल्क शहर में हुआ था। वे एक स्वतंत्र विचारों वाली

शिक्षिका थीं, जिनका झुकाव सामाजिक कार्यों और शिक्षा की ओर था। वे बालिकाओं की शिक्षा की सशक्त समर्थक थीं और पश्चिमी समाज में स्त्रियों की स्थिति पर खुलकर प्रश्न उठाती थीं।

1895 में उनकी मुलाकात स्वामी विवेकानंद से हुई जब वे लंदन में भारतीय दर्शन और वेदांत पर प्रवचन दे रहे थे। यह भेंट उनके जीवन की दिशा बदल देने वाली सिद्ध हुई। विवेकानंद के विचारों से प्रभावित होकर मार्गरिट नोबल ने न केवल हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति को गहराई से समझा, बल्कि भारत में सेवा कार्य करने का संकल्प भी लिया।

2.2.2 भारत आगमन और 'निवेदिता' का जन्म

1898 में वे भारत आईं और स्वामी विवेकानंद द्वारा उन्हें 'निवेदिता' नाम दिया गया, जिसका अर्थ होता है — "जिसने स्वयं को समर्पित कर दिया हो।" इस नाम के साथ ही उनका जीवन भारत के लिए पूर्णतः समर्पित हो गया। उन्होंने संन्यासिनी का जीवन अपनाया, भारतीय वेशभूषा धारण की और भारतीय जीवनशैली को आत्मसात किया।

2.2.3 भारतीय महिला शिक्षा में योगदान

उनका मुख्य कार्यक्षेत्र महिला शिक्षा था। उस समय भारत में बालिकाओं की शिक्षा पर सामाजिक वर्जनाएं थीं। विशेषकर निम्न और मध्यम वर्ग की लड़कियाँ शिक्षा से वंचित थीं। भगिनी निवेदिता ने कलकत्ता (अब कोलकाता) में बालिकाओं के लिए एक विद्यालय स्थापित किया, जहाँ लड़कियों को न केवल पढ़ाया जाता था, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रोत्साहित भी किया जाता था।

उन्होंने भारतीय संस्कृति को अपमानित किए बिना, भारतीय महिलाओं में आत्मविश्वास और चेतना का संचार किया। वे यह मानती थीं कि भारत का पुनरुत्थान तब तक संभव नहीं जब तक उसकी नारियाँ शिक्षित और सशक्त नहीं बनतीं।

2.2.4 सांस्कृतिक पुनर्जागरण और विचारधारा का निर्माण

भगिनी निवेदिता का योगदान केवल शिक्षा तक सीमित नहीं था। उन्होंने भारतीय कला, संस्कृति, दर्शन और इतिहास के गहन अध्ययन के माध्यम से एक वैचारिक भूमि तैयार की, जो आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम के वैचारिक आधार के रूप में सामने आई। उन्होंने भारतीय संस्कृति की गरिमा को न केवल भारत में, बल्कि पश्चिमी जगत में भी स्थापित करने का प्रयास किया।

उनकी लेखनी तेजस्वी और विवेकपूर्ण थी। उन्होंने भारतीय इतिहास, नारीत्व, राष्ट्रवाद और धर्म पर कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं — जैसे *The Web of Indian Life*, *Kali the Mother*, और *Religion and Dharma*। इन ग्रंथों ने न केवल भारतीयों

को अपने गौरव का बोध कराया, बल्कि पश्चिमी आलोचकों को भी भारत के प्रति दृष्टिकोण बदलने पर विवश किया।

2.2.5 क्रांतिकारी आंदोलनों के प्रति सहानुभूति

यद्यपि वे प्रत्यक्ष रूप से किसी राजनीतिक संगठन से नहीं जुड़ीं, लेकिन भगिनी निवेदिता की विचारधारा और लेखन ने स्वतंत्रता सेनानियों में आत्मबल और राष्ट्रप्रेम की भावना को बल दिया। वे अज्ञात रूप से अनेक क्रांतिकारियों के संपर्क में थीं और उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के विचार को सांस्कृतिक आत्मविश्वास से जोड़ने का प्रयास किया।

उनकी मित्रता जमशेदजी टाटा, अबनींद्रनाथ टैगोर, और बिपिन चंद्र पाल जैसे नेताओं से थी। उन्होंने वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति के लिए भी भारतीय युवाओं को प्रेरित किया। उनके विचारों में स्पष्ट रूप से यह विश्वास था कि भारत को गुलामी से मुक्ति केवल राजनीतिक प्रयासों से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और बौद्धिक नवजागरण से भी मिलेगी।

2.2.6 भारतीयता का प्रतीक

भगिनी निवेदिता का जीवन इस बात का प्रमाण है कि "भारतीयता" रक्त से नहीं, संवेदना और समर्पण से उपजती है। वे हिन्दू जीवनशैली की गहराई से पहचान रखती थीं और उन्होंने स्वयं को एक साध्वी की भाँति भारत की सेवा में अर्पित कर दिया था। उन्होंने 1911 में दार्जिलिंग में अंतिम सांस ली, लेकिन मरने से पहले तक वे भारतीयता की एक जीवंत प्रतीक बनी रहीं।

भगिनी निवेदिता न केवल भारतीय महिला शिक्षा की अग्रदूत थीं, बल्कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के वैचारिक आधार को भी गहराई से सींचा। वे स्वामी विवेकानंद के स्वप्न की साकार प्रतिरूप थीं — एक ऐसी महिला, जो भारत के लिए जिए, भारत के लिए लिखे, और भारत के लिए ही अपना जीवन उत्सर्ग कर दे। आज की पीढ़ी के लिए भगिनी निवेदिता एक प्रेरणा हैं — कि देशसेवा जाति, धर्म या जन्मस्थान से नहीं, बल्कि कर्तव्य, प्रेम और समर्पण से जुड़ी होती है। उनका योगदान भारत के स्वतंत्रता संग्राम की उस मौन भूमि की तरह है, जिस पर अनेक विचारशील बीज पड़े और आगे चलकर जो फलित हुए — स्वराज्य के रूप में।

2.3 मदालसा रॉय – मजदूर वर्ग की स्त्रियों की आवाज़ और वामपंथी संघर्ष की नायिका

मदालसा रॉय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की उन क्रांतिकारी महिलाओं में थीं जिन्होंने कम्युनिस्ट आंदोलन के माध्यम से सामाजिक न्याय, श्रमिक अधिकारों और स्त्री मुक्ति की लड़ाई को एक नई दिशा दी। वे उन गिनी-चुनी महिलाओं में थीं[xii] जिन्होंने न केवल राजनीतिक विचारधारा को समझा, बल्कि उसे जन-आंदोलन में परिवर्तित करने के लिए जमीनी स्तर पर

कार्य किया। उनकी सक्रियता ने विशेष रूप से मजदूर वर्ग की महिलाओं के बीच चेतना जगाने में अहम भूमिका निभाई, एक ऐसा कार्य जिसे पारंपरिक स्वतंत्रता संग्राम की मुख्यधारा में अक्सर अनदेखा कर दिया गया। दुर्भाग्यवश, उनका उल्लेख प्रायः केवल वामपंथी संगठनों या कम्युनिस्ट पार्टी के दस्तावेजों तक ही सीमित रहा, जबकि उनका प्रभाव व्यापक और ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण था[xiii]।

2.3.1 प्रारंभिक जीवन और वैचारिक आधार

मदालसा रॉय का जन्म एक साधारण बंगाली परिवार में हुआ था, लेकिन उनका मन बचपन से ही सामाजिक असमानताओं को लेकर विचलित रहता था। वे एक शिक्षित महिला थीं और मार्क्सवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थीं[xiv]। उनके वैचारिक जीवन की नींव उसी समय पड़ गई थी जब उन्होंने देखा कि कैसे गरीब श्रमिकों, विशेषकर महिलाओं, का शोषण किया जा रहा है, और कैसे उनकी आवाज़ को अनसुना किया जाता है[xv]। स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ देश में वर्ग-संघर्ष और सामाजिक न्याय की चेतना भी विकसित हो रही थी, और इसी परिवर्तनशील वातावरण में मदालसा रॉय ने कम्युनिस्ट आंदोलन के बैनर तले मजदूर महिलाओं को संगठित करने का संकल्प लिया।

2.3.2 मजदूर महिलाओं का राजनीतिकरण

मदालसा रॉय का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने केवल राजनीतिक मंचों पर भाषण नहीं दिए, बल्कि फैक्ट्री, मिलों, और श्रमिक बस्तियों में जाकर स्वयं महिलाओं को संगठित किया। उन्होंने उन्हें बताया कि उनकी गरीबी, उनके शोषण, और उनकी चुप्पी — सब राजनीतिक हैं।

वे उन्हें अपने अधिकारों के लिए बोलने, यूनियनों में भाग लेने, और सामूहिक शक्ति का उपयोग करने के लिए प्रेरित करती थीं। उनका मानना था कि जब तक श्रमिक वर्ग की महिलाएँ संगठित नहीं होंगी, तब तक न तो श्रमिक आंदोलन पूर्ण होगा, और न ही सामाजिक क्रांति संभव हो सकेगी[xvi]।

उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप, कई महिलाओं ने हड़तालों, विरोध रैलियों, और जनसभाओं में भाग लेना शुरू किया। यह एक बड़ा सामाजिक परिवर्तन था, क्योंकि तब तक श्रमिक आंदोलन भी पुरुष प्रधान ही था।

2.3.3 राजनीतिक सक्रियता और जोखिम

मदालसा रॉय केवल विचारों तक सीमित नहीं रहीं — उन्होंने कई बार ब्रिटिश सरकार के कानूनों का उल्लंघन करते हुए विरोध प्रदर्शन किए, भूमिगत सभाओं में भाग लिया, और कम्युनिस्ट पार्टी की महिला शाखा को मजबूत करने का काम किया।

ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कई बार गिरफ्तार करने की कोशिश की, उनके आंदोलनों को "राष्ट्रद्रोही" करार दिया गया, और उन पर निगरानी रखी गई। फिर भी वे न रुकीं, न झुकीं। उन्होंने गुमनामी की कीमत पर एक विचारधारा, एक क्रांति, और एक भविष्य के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया[xvii]।

2.3.4 ऐतिहासिक उपेक्षा

मदालसा रॉय का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक अनदेखी परत है। मुख्यधारा के इतिहास लेखन में कम्युनिस्ट आंदोलनों और उनके नेताओं को अक्सर 'वैकल्पिक' या 'विभाजक' करार देकर नजरअंदाज कर दिया गया। इसी प्रवृत्ति के कारण, मदालसा जैसी महिलाओं की भूमिका को भी सीमित कर दिया गया — वामपंथी दस्तावेज़ों और पार्टी इतिहासों तक। उनके संघर्षों को स्वतंत्रता संग्राम के एक 'अलग विचारधारा वाले उपविभाग' में डाल दिया गया, जबकि वस्तुतः, वे राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक और आर्थिक विमर्श को गहराई देने का कार्य कर रही थीं।

मदालसा रॉय उन गुमनाम क्रांतिकारी महिलाओं में से हैं जिन्होंने राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि शोषितों की मुक्ति का औजार समझा। उन्होंने महिलाओं को सिखाया कि उनके संघर्ष व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक हैं। आज जब हम स्वतंत्रता संग्राम की विरासत की बात करते हैं, तो यह आवश्यक है कि ऐसे नामों को भी याद किया जाए जिन्होंने विचारधारा, संगठन और जनचेतना के स्तर पर मौलिक कार्य किया। मदालसा रॉय का जीवन इस बात का प्रमाण है कि क्रांति केवल बंदूक और बारूद से नहीं, बल्कि विचार, संगठन और साहस से होती है — और इसमें नारी शक्ति की भूमिका केंद्रीय हो सकती है। उनकी कहानी को इतिहास के सीमित गलियारों से निकालकर जनस्मृति और शिक्षा के मुख्यधारा में लाना आज की जिम्मेदारी है।

3. महिला संगठनों का योगदान

3.1 भारत माता समिति – स्वतंत्रता संग्राम में नारी चेतना का सांस्कृतिक संगठक

भारत माता समिति भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गठित एक ऐसा सांस्कृतिक राष्ट्रवादी संगठन था, जिसने महिलाओं को आंदोलन से जोड़ने का एक सशक्त मंच प्रदान किया। यह समिति उस दौर में सक्रिय हुई जब महिलाएँ सार्वजनिक जीवन में सीमित थीं, और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध खुलकर बोलना या कार्य करना उनके लिए अत्यंत जोखिम भरा था। फिर भी, इस संगठन ने स्त्रियों को राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा, उन्हें

संगठित किया और उन्हें ब्रिटिश शासन के विरुद्ध *गुप्त रूप से प्रचार कार्यों* में भागीदार बनाया[xviii]।

3.1.1 गठन और उद्देश्य

भारत माता समिति का गठन स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में हुआ, विशेष रूप से उस समय जब स्वदेशी आंदोलन और सांस्कृतिक जागरण अपने चरम पर थे। समिति का प्रमुख उद्देश्य था:

- भारतीय महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से जागरूक बनाना,
- राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार करना,
- सांस्कृतिक मूल्यों के माध्यम से स्वतंत्रता के विचार को घर-घर पहुँचाना।

यह समिति स्वतंत्रता संग्राम की मुख्यधारा से जुड़ी हुई थी, लेकिन इसका कार्यक्षेत्र अधिकतर गोपनीय और सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से संचालित होता था, जिससे महिलाओं को सुरक्षित और प्रभावशाली भागीदारी का अवसर मिल सके[xix]।

3.1.2 महिला सहभागिता और गुप्त कार्य

भारत माता समिति में सम्मिलित महिलाएँ सामान्यतः घरेलू जीवन में रहने वाली थीं, लेकिन वे उत्साही, शिक्षित और देशप्रेम से ओतप्रोत थीं। उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रत्यक्ष संघर्ष तो नहीं किया, लेकिन उन्होंने आंदोलन को वैचारिक और सामाजिक धरातल पर मजबूत करने का कार्य किया।

समिति के अंतर्गत महिलाओं ने:

- विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का प्रचार किया,
- स्वदेशी वस्त्रों की बिक्री के लिए घरेलू मेलों और महिला समूहों का आयोजन किया,
- देशभक्ति गीतों और भजन मंडलियों के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाएँ जागृत कीं,
- ब्रिटिश सरकार की नीतियों की आलोचना करने वाले पर्चे गुप्त रूप से वितरित किए,
- क्रांतिकारियों को आश्रय देने और संदेश पहुँचाने जैसे कार्य भी निभाए।

इन कार्यों को वे *धार्मिक आयोजनों, कढ़ाई-बुनाई के कार्यक्रमों* और महिला सभाओं की आड़ में करती थीं, जिससे ब्रिटिश पुलिस की निगाहें उन पर न पड़ें[xx]।

3.1.3 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और प्रतीकात्मक शक्ति

इस संगठन ने "भारत माता" को केवल एक धार्मिक या सांस्कृतिक कल्पना नहीं, बल्कि एक राजनीतिक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। महिलाओं ने "भारत माता" की आराधना के माध्यम से अपने भीतर देशभक्ति का भाव भरा और यह

विचार फैलाया कि भारत न केवल एक भू-भाग है, बल्कि वह एक *माता* है जिसकी सेवा करना हर नागरिक का कर्तव्य है।

भारत माता समिति ने महिला सहभागिता को धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीकों से जोड़कर ऐसा *राष्ट्रवाद* विकसित किया, जो महिलाओं के लिए सहज, आत्मीय और प्रेरक बन गया।

3.1.4 ऐतिहासिक उपेक्षा

भारत माता समिति जैसे संगठनों की भूमिका को स्वतंत्रता संग्राम के औपचारिक दस्तावेज़ों और इतिहास की मुख्यधारा में अपेक्षित स्थान नहीं मिला। महिलाओं के इन 'नरम लेकिन निर्णायक' योगदानों को प्रायः अनौपचारिक और गौण समझा गया, जबकि वस्तुतः वे जनचेतना के निर्माण की रीढ़ थे[xxi]।

भारत माता समिति स्वतंत्रता संग्राम के सांस्कृतिक आयाम की एक महत्वपूर्ण कड़ी थी। इसने महिलाओं को आंदोलन की वैचारिक धारा से जोड़ा, उन्हें संगठित किया, और ऐसे कार्यों में संलग्न किया जहाँ वे प्रभावी भी थीं और अपेक्षाकृत सुरक्षित भी। इसने एक वैकल्पिक प्रतिरोध मॉडल प्रस्तुत किया — जहाँ क्रांति शस्त्रों से नहीं, विचार, प्रतीक और संगठन से लड़ी जाती है।

आज भारत माता समिति को केवल एक उपेक्षित ऐतिहासिक संगठन के रूप में नहीं, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की सांस्कृतिक चेतना की संगठित अभिव्यक्ति के रूप में मान्यता देना आवश्यक है।

एक सांस्कृतिक राष्ट्रवादी संगठन जो महिलाओं को स्वतंत्रता संग्राम की विचारधारा से जोड़ने में सक्रिय रहा। इसमें महिलाओं ने छिपे तौर पर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रचार कार्य किए।

3.2 महिला कांग्रेस

3.2.1 महिला कांग्रेस– महिलाओं की संगठित राजनीतिक चेतना का जनआंदोलन

महिला कांग्रेस, जिसे औपचारिक रूप से ऑल इंडिया वीमेन कांफ्रेंस के नाम से जाना जाता है, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक सुधार आंदोलन का एक ऐतिहासिक संगठन है, जिसने भारतीय महिलाओं की राजनीतिक, शैक्षिक और सामाजिक चेतना को जगाने में केंद्रीय भूमिका निभाई। यह वह मंच था जिसने महिलाओं की भागीदारी को औपचारिक, संगठित और प्रभावी रूप दिया, विशेषकर उस दौर में जब समाज महिलाओं की सार्वजनिक भूमिका को सीमित रखता था।

3.2.2 स्थापना और पृष्ठभूमि

ऑल इंडिया वीमेन कांफ्रेंस की स्थापना 1927 में दिल्ली में हुई। इसके प्रारंभिक उद्देश्य थे:

- महिलाओं को शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर दिलाना,
- सामाजिक सुधारों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना,
- और उन्हें राजनीतिक अधिकारों, विशेषकर मताधिकार, के लिए संगठित करना।

इस संगठन की स्थापना उन प्रगतिशील महिलाओं द्वारा की गई थी जो यह समझती थीं कि राष्ट्र निर्माण केवल पुरुषों के कंधों पर नहीं छोड़ा जा सकता, बल्कि इसमें महिलाओं की भी निर्णायक भूमिका होनी चाहिए[xxii]।

प्रारंभिक संस्थापक सदस्यों में मार्गरेट कजिन्स, कamini Roy, हंसा मेहता, सरोजिनी नायडू, और राजकुमारी अमृत कौर जैसी जानी-मानी शिक्षित महिलाएँ थीं, जिन्होंने न केवल विचार दिया, बल्कि पूरे देश में महिलाओं को संगठित करने के लिए अथक परिश्रम किया।

3.2.3 शिक्षा और सामाजिक सुधार के लिए कार्य

AIWC ने अपने आरंभिक वर्षों में महिलाओं की शिक्षा को सबसे बड़ा हथियार माना। उनका मानना था कि यदि महिलाएँ शिक्षित होंगी, तभी वे सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज़ उठा सकेंगी और स्वतंत्र भारत की बराबर की निर्माता बन सकेंगी।

इस उद्देश्य से:

- उन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए स्कूल, कॉलेज, और प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना को बढ़ावा दिया।
- बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज, सती प्रथा और बहुविवाह जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ अभियान चलाए।
- महिलाओं के लिए कानूनी अधिकार, जैसे संपत्ति में अधिकार, तलाक, और विवाह की न्यूनतम आयु जैसे विषयों पर भी सक्रिय रूप से कार्य किया।

3.2.4 राजनीतिक चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी

AIWC ने महिलाओं को केवल सामाजिक सुधारों तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें राजनीतिक रूप से भी जागरूक और सक्रिय किया। इस मंच के माध्यम से महिलाओं को यह बताया गया कि उनकी समस्याओं का समाधान केवल शिक्षा या कानून से नहीं, बल्कि राजनीतिक भागीदारी से भी संभव है।

- AIWC ने महिलाओं के मताधिकार के लिए शव्यापी अभियान चलाया, जिसे अंततः स्वतंत्र भारत में संविधान द्वारा मान्यता दी गई।
- इस संगठन के तहत ही महिलाओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आंदोलन में अधिक सक्रियता से भाग लेना शुरू किया[xxiii]।
- अनेक महिलाएँ विधान सभाओं और कांग्रेस समितियों में सदस्य बनकर नीति निर्धारण में भूमिका निभाने लगीं।

यह संगठन स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की संगठित और औपचारिक भागीदारी का प्रारंभिक केंद्र बना। इसके माध्यम से हजारों महिलाओं ने पहली बार सार्वजनिक रूप से आंदोलनों में भाग लिया, जुलूसों में शामिल हुईं, और जेल भी गईं।

3.2.5 अंतरराष्ट्रीय विमर्श में सहभागिता

AIWC न केवल राष्ट्रीय, बल्कि अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी भारतीय महिलाओं की आवाज़ बनी। इसके प्रतिनिधियों ने League of Nations और बाद में United Nations में भारतीय महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकारों पर बात की[xxiv]।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि भारतीय महिलाएँ केवल घरेलू सीमाओं तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी समता, न्याय और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने में सक्षम थीं।

3.2.6 ऐतिहासिक योगदान और विरासत

AIWC आज भी एक सक्रिय संगठन है, लेकिन इसके ऐतिहासिक योगदान को स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में अलग से पहचाना जाना आवश्यक है। यह वह मंच था, जिसने:

- महिलाओं को "प्राप्तकर्ता" नहीं, बल्कि "निर्माता" की भूमिका में रखा,
- उन्हें संगठित रूप से सोचने, बोलने और निर्णय लेने की क्षमता दी,
- और उन्हें स्वतंत्र भारत के राजनीतिक विमर्श का अभिन्न अंग बनाया[xxv]।

महिला कांग्रेस (AIWC) का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान मात्र समर्थन तक सीमित नहीं था, बल्कि यह संगठनात्मक शक्ति, वैचारिक स्पष्टता और नेतृत्व क्षमता का परिचायक था। इस संगठन ने यह सिद्ध किया कि नारी शक्ति केवल पारंपरिक सीमाओं में सिमटी हुई नहीं है, बल्कि वह राष्ट्र निर्माण और राजनीतिक संघर्ष में भी समान रूप से सक्षम है। आज जब हम स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका की बात करते हैं, तो AIWC को एक आंदोलनकारी संस्था के रूप में याद करना चाहिए — जिसने हज़ारों महिलाओं को मौन से मुखरता की ओर, और पीछे से नेतृत्व तक की यात्रा तय कराई[xxvi]।

4. क्षेत्रीय विविधता और सामाजिक प्रतिक्रियाएँ

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी कोई एकसमान या एकरूपी अनुभव नहीं था। यह भागीदारी क्षेत्रीय पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना, शिक्षा, वर्ग और संस्कृति के आधार पर भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई दी। शहरी और ग्रामीण महिलाओं की भूमिका, उनके संघर्ष के तरीके और उन्हें मिलने वाली सामाजिक प्रतिक्रियाएँ एक-दूसरे से काफी अलग थीं, लेकिन दोनों ही अपने-अपने स्तर पर अत्यंत प्रभावशाली और क्रांतिकारी थीं[xxvii]।

4.1 ग्रामीण बनाम शहरी महिलाओं का संघर्ष

4.1.1 शहरी महिलाएं:

शहरी क्षेत्रों में रहने वाली महिलाएं अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित और संगठित थीं। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के राजनीतिक और वैचारिक पक्ष को अपनाया और सक्रिय रूप से सभाओं, रैलियों, जुलूसों, सविनय अवज्ञा आंदोलनों, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और चुनावों में भागीदारी जैसी गतिविधियों में हिस्सा लिया। उनका संघर्ष अधिकतर संगठित और नेतृत्व-संपन्न था, जिसमें उन्होंने राजनीतिक दलों और महिला संगठनों के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया। शहरी महिलाओं में सरोजिनी नायडू, अरुणा आसफ अली, हंसा मेहता, कमला नेहरू जैसी नेताओं ने क्रांतिकारी भूमिका निभाई[xxviii]। वे प्रायः अखबारों में लेख लिखतीं, महिला सम्मेलनों में भाषण देतीं और विदेशों में भारत की स्थिति को रखतीं, जिससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी स्वतंत्रता आंदोलन को समर्थन मिला।

4.1.2 ग्रामीण महिलाएं:

इसके विपरीत, ग्रामीण महिलाएं अक्सर औपचारिक शिक्षा या संगठनों से दूर थीं, लेकिन उनका संघर्ष कहीं अधिक प्रत्यक्ष और साहसी था। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को जीवन के व्यवहारिक संघर्ष से जोड़कर देखा और जमींदारी प्रथा, ब्रिटिश कर व्यवस्था, जंगल कानूनों और जबरन श्रम जैसे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

वे कर न देना, सरकारी नीलामी रोकना, जंगलों से लकड़ी और चारा लाना (जिस पर अंग्रेजी कानून ने रोक लगाई थी), नमक बनाना, जैसे कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लेती थीं। यह प्रतिरोध प्रायः *अव्यवस्थित लेकिन गहरे जनभावना से प्रेरित* होता था।

गांवों की महिलाओं ने कई बार अपने पुरुष साथियों की गिरफ्तारी के बाद आंदोलनों की कमान भी संभाली और ब्रिटिश अधिकारियों का डटकर विरोध किया। उनकी लड़ाई शांतिपूर्ण आंदोलनों के साथ-साथ कई बार सीधा टकराव और प्रतिरोध का रूप भी लेती थी।

4.2 सामाजिक प्रतिक्रिया

4.2.1 पितृसत्तात्मक समाज में विरोध:

महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता को समाज के पारंपरिक ढांचे में अक्सर अच्छी नजर से नहीं देखा गया। पुरुष-प्रधान समाज में यह धारणा प्रचलित थी कि महिलाएं केवल घरेलू कार्यों के लिए उपयुक्त हैं, और सार्वजनिक या राजनीतिक क्षेत्र में उनकी भूमिका अनुचित है[xxix]। इस मानसिकता के कारण उन्हें:

- निंदा, सामाजिक बहिष्कार, तिरस्कार और अपमान का सामना करना पड़ा,
- कई मामलों में परिवारों द्वारा आंदोलन में भाग लेने से रोका गया,
- विवाह योग्य लड़कियों को आंदोलनों में भाग लेने से वंचित किया गया क्योंकि इससे 'सम्मान' पर आंच आती थी।

फिर भी, इन विरोधों के बावजूद अनेक महिलाओं ने इन सामाजिक बंधनों को तोड़ा और राष्ट्रीय कार्य में अपना योगदान दिया।

4.2.2 सामाजिक असमानताओं के खिलाफ संघर्ष:

महिलाओं ने केवल विदेशी शासन का विरोध नहीं किया, बल्कि अपने समाज की आंतरिक विषमताओं, जैसे बाल विवाह, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा की कमी, विधवा पुनर्विवाह पर रोक जैसे मुद्दों पर भी मुखर होकर संघर्ष किया। उन्होंने यह समझा कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक सुधार भी आवश्यक है, और इन दोनों को समानांतर चलाना होगा। इस दिशा में शिक्षा, विशेष रूप से बालिकाओं की शिक्षा, को उन्होंने एक हथियार बनाया। कई महिलाओं ने लड़कियों के स्कूल खोले, पाठशालाओं में शिक्षण कार्य किया, और महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका केवल एक समानांतर समर्थन भूमिका नहीं थी, बल्कि वह विविधता से भरी हुई, स्थानिक रूप से विशिष्ट और सामाजिक रूप से जटिल थी। शहरी और ग्रामीण दोनों परिवेशों में महिलाओं ने अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार प्रतिरोध और परिवर्तन का रास्ता चुना। सामाजिक विरोध, उपेक्षा और पितृसत्तात्मक सोच के बीच भी उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को सामाजिक क्रांति का माध्यम बनाया। इस विविधता को पहचानना और उसका दस्तावेजीकरण करना आज के शोध और इतिहास लेखन के लिए अत्यंत आवश्यक है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि भारतीय स्वतंत्रता केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं थी — यह सामाजिक और लैंगिक मुक्ति का भी संघर्ष था।

5. शोध अंतर – महिला नेतृत्व, संगठन और क्षेत्रीय योगदान के अध्ययन में व्याप्त कमियाँ

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका को लेकर अब तक हुए अधिकांश शोधों और इतिहास लेखन में कई गंभीर अंतराल और उपेक्षाएँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। इन अंतरालों ने न केवल महिलाओं के नेतृत्व और संगठनात्मक योगदान को ऐतिहासिक विमर्श से बाहर रखा है, बल्कि देश के विविध क्षेत्रों में सक्रिय महिला सेनानियों की कहानी को भी हाशिए पर डाल दिया है। यह खंड तीन प्रमुख क्षेत्रों में इस शोध अभाव को विस्तार से स्पष्ट करता है।

5.1 नेतृत्व का अध्ययन अधूरा

जब हम महिलाओं के नेतृत्व की बात करते हैं, तो इतिहास और शोध का ध्यान सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित, कस्तूरबा गांधी जैसी जानी-पहचानी शहरी और उच्चवर्गीय महिलाओं तक सीमित रह जाता है। इन महिलाओं का योगदान अत्यंत सराहनीय रहा है, लेकिन इसके कारण कम प्रसिद्ध और क्षेत्रीय स्तर पर कार्य करने वाली महिला नेताओं की उपेक्षा हो गई है।

उदाहरण के लिए:

- रानी गाइडिन्ल्यू, जिन्होंने नागालैंड में अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया और पारंपरिक आदिवासी धर्म और संस्कृति को संरक्षित रखने के लिए जेल तक गईं, उनके नेतृत्व की शैली पर बहुत कम शोध हुआ है[xxx]।
- दुर्गा भाभी (दुर्गावती देवी), जो भगत सिंह की क्रांतिकारी टोली का हिस्सा थीं और अंग्रेजों से सशस्त्र टकराव में सक्रिय थीं, उनकी रणनीतियों, नेटवर्क और भूमिगत गतिविधियों का विस्तृत अध्ययन अब तक नहीं हो सका है[xxxi]।

इन दोनों महिलाओं का नेतृत्व अलग-अलग संदर्भों में था – एक आदिवासी सांस्कृतिक रक्षा आंदोलन में, और दूसरी क्रांतिकारी शहरी गुप्तचर नेटवर्क में – लेकिन इनकी रणनीतिक सोच, साहसिक निर्णय, और नेतृत्व क्षमता को ऐतिहासिक और अकादमिक दृष्टि से वह स्थान नहीं मिल पाया जिसके वे अधिकारी थीं।

यह स्पष्ट करता है कि महिला नेतृत्व को लेकर एक समावेशी, बहुआयामी और क्षेत्रीय अध्ययन की आवश्यकता है, जो जाति, वर्ग, भाषा और संस्कृति के विविध संदर्भों को साथ लेकर चले।

5.2 संगठनात्मक अभिलेखों की कमी

महिलाओं के संगठनात्मक योगदान को प्रमाणित करने के लिए ऐतिहासिक अभिलेखों (archives) और दस्तावेजों की बहुत

अधिक आवश्यकता होती है, लेकिन दुर्भाग्यवश कई महिला संगठनों से संबंधित दस्तावेज या तो नष्ट हो चुके हैं या अब तक सार्वजनिक शोध के लिए उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

उदाहरण के लिए:

- भारत सेविका संघ, जिसे महिला सेवा कार्यों और ग्रामीण विकास के लिए जाना जाता था, उसकी गतिविधियों और कार्यक्षेत्र का पूरा ब्योरा कहीं उपलब्ध नहीं है।
- प्रांतीय महिला दल, जो स्थानीय आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए गठित किए गए थे, उनके संगठनात्मक ढाँचे, कार्यप्रणाली, और रिपोर्टिंग दस्तावेजों का अभाव शोधकर्ताओं के लिए एक बड़ी बाधा बना हुआ है।

यह अभिलेखीय संकट यह भी दिखाता है कि इतिहास लेखन में महिला संगठनों को गंभीरता से दर्ज नहीं किया गया, और उनके योगदान को या तो 'सहायक' की श्रेणी में रखा गया या फिर 'अनौपचारिक प्रयास' मानकर भुला दिया गया। बिना संगठनों के दस्तावेजों के, यह तय कर पाना कठिन हो जाता है कि महिलाओं ने किस स्तर पर नेतृत्व किया, किस प्रकार के कार्य किए, और उनके प्रयासों का सामाजिक प्रभाव क्या था।

5.3 प्रादेशिक अध्ययन की कमी

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर हुए अधिकांश शैक्षणिक और लोकप्रिय शोध उत्तर भारत, विशेषकर बंगाल, पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश पर केंद्रित रहे हैं। इसके कारण पूर्वोत्तर, दक्षिण और पश्चिमी भारत में महिलाओं की भागीदारी की कहानियाँ हाशिए पर चली गईं हैं।

उदाहरण के लिए:

- पूर्वोत्तर भारत की रानी गाइडिन्ल्यू के अतिरिक्त अन्य महिला सेनानियों पर बहुत कम अध्ययन हुआ है। वहाँ की लोकल भाषाओं, जनजातीय संस्कृति और सामाजिक संरचना के कारण इतिहास लेखन की पहुँच सीमित रही है।
- दक्षिण भारत, जहाँ अन्ना चिदंबरम, वी.एम. सुंदरा अम्मा, और कर्नाटक की गिरिजा देवी जैसी महिलाएं आंदोलनों में शामिल रहीं, पर उनके कार्यों को व्यापकता से नहीं लिखा गया।
- केरल और तमिलनाडु की महिलाओं ने भी सविनय अवज्ञा, नमक सत्याग्रह, और श्रमिक आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, परन्तु इन पर केंद्रित शोध अत्यंत कम हैं।

इन क्षेत्रों में भाषाई विविधता, दस्तावेज़ों की अनुपलब्धता, और राष्ट्रीय विमर्श से दूरी के कारण महिलाओं की क्रांतिकारी भूमिका को वह स्थान नहीं मिल पाया, जो उन्हें मिलना चाहिए था। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका का इतिहास अब भी आधा लिखा गया इतिहास है। न तो उनके सक्रिय नेतृत्व की गहराई, न ही उनके संगठनात्मक योगदान की व्यापकता, और न ही प्रादेशिक विविधता को अब तक सही ढंग से दर्ज किया गया है। इन शोध अंतरालों को भरना केवल एक शैक्षणिक ज़रूरत नहीं, बल्कि ऐतिहासिक न्याय की प्रक्रिया का हिस्सा है। जब तक इन गुमनाम महिला नेताओं, संगठनों, और क्षेत्रीय संघर्षों को प्रकाश में नहीं लाया जाएगा, तब तक स्वतंत्रता संग्राम का चित्र अधूरा रहेगा। इसलिए भविष्य के शोधकर्ताओं, इतिहासकारों और शिक्षाविदों के लिए यह एक स्पष्ट आह्वान है कि वे महिला नेतृत्व, संगठनों के अभिलेख, और प्रादेशिक भागीदारी को नई दृष्टि से, समावेशी दृष्टिकोण से और स्थानीय संदर्भों में समझने और प्रस्तुत करने का कार्य करें।

6. निष्कर्ष: पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की गाथा न केवल तलवारों और राजनीतिक घोषणाओं की कहानी है, बल्कि यह संघर्ष, त्याग और मौन क्रांति का ऐसा समुच्चय है, जिसमें गुमनाम महिला सेनानियों और संगठनों की भूमिका नींव के पत्थर जैसी रही है। इन महिलाओं ने केवल सार्वजनिक आंदोलनों में हिस्सा नहीं लिया, बल्कि उन्होंने राजनीतिक चेतना, सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के हर मोर्चे पर अपने साहस, नेतृत्व और समर्पण की मिसाल पेश की। जहाँ एक ओर शहरी महिलाएं राजनीतिक मंचों, सभाओं और संगठनों के माध्यम से सक्रिय रहीं, वहीं ग्रामीण और आदिवासी महिलाओं ने प्रत्यक्ष प्रतिरोध, कर बहिष्कार, जंगल कानूनों के उल्लंघन जैसे क्रांतिकारी कदम उठाए। उन्होंने पारंपरिक सीमाओं को चुनौती दी, बाल विवाह, अशिक्षा, दहेज और स्त्री दमन के विरुद्ध आवाज़ बुलंद की। इन संघर्षों का चरित्र बहुआयामी था — कहीं यह प्रतिक्रिया के रूप में था, कहीं यह नेतृत्व में प्रकट हुआ, और कहीं यह संगठनात्मक क्षमता के रूप में सामने आया। महिला संगठनों — जैसे *भारत माता समिति*, *महिला कांग्रेस*, *भारत सेविका संघ* – ने महिलाओं को न केवल संगठित किया, बल्कि उन्हें विचारशील, आत्मनिर्भर और राष्ट्र सेवा के लिए तत्पर बनाया। इन संगठनों के अभिलेखों की अनुपलब्धता, नेताओं की उपेक्षा, और क्षेत्रीय विविधता की अनदेखी ने स्वतंत्रता संग्राम के इस पक्ष को ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में

अनुचित रूप से गौण बना दिया है। यह स्पष्ट है कि इतिहास लेखन की पारंपरिक पद्धतियाँ महिलाओं के योगदान को समग्रता में नहीं दर्शा सकीं। जिन सेनानियों ने बिना किसी पुरस्कार, मान्यता या सार्वजनिक पद के, राष्ट्र के लिए संघर्ष किया – वे आज भी शोध और जनचेतना की रोशनी से वंचित हैं।

इसलिए अब समय आ गया है कि हम इन गुमनाम नायिकाओं के योगदान का पुनर्मूल्यांकन करें। यह पुनर्मूल्यांकन न केवल इतिहास को संतुलित करेगा, बल्कि यह आधुनिक पीढ़ियों को प्रेरणा, आत्मबल और सामाजिक चेतना का मार्ग भी दिखाएगा। स्कूलों, विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और सार्वजनिक विमर्श में इन महिलाओं की कहानियाँ शामिल की जानी चाहिए ताकि स्वतंत्रता संग्राम का वास्तविक स्वरूप – जिसमें स्त्री शक्ति ने मौन, मगर निर्णायक भूमिका निभाई – सामने आ सके। इस पुनर्मूल्यांकन से हम न केवल अतीत का ऋण चुकाएँगे, बल्कि भविष्य की महिलाओं को भी यह संदेश देंगे कि राष्ट्र निर्माण केवल पुरानी परिभाषाओं से नहीं, बल्कि हर आवाज़, हर संघर्ष और हर त्याग को समान सम्मान देने से होता है।

Cite this Article:

Bala S, Jaswant Singh J and Chamoli A. गुमनाम नातयकाएँ: भारीय स्विंत्रि संग्राम में उपेतक्षि मतहला सेनातनय ं और संगठनात्मक य गदान का पुनमूायांकन. Int. J. Sci. Info. 2025; 2(11):37-57

8. संदर्भ सूची

[i] कुमार, राधा। (1993)। *करने का इतिहास: भारत में महिलाओं के अधिकारों और नारीवाद के आंदोलनों का चित्रात्मक विवरण (1800-1990)*।

[ii] चक्रवर्ती, उमा। (2006)। *इतिहास का पुनर्लेखन: पंडिता रमाबाई का जीवन और समय*। ज़ुबान प्रकाशन।

[iii] रे, बर्नाली। (2005)। *भारत की महिलाएं: औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक काल*। सेंटर फॉर विमेंस डेवलपमेंट स्टडीज़।

[iv] रॉय, अंजलि। (2010)। *लिंग और उपनिवेशवाद: भारत में महिलाओं का इतिहास*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

[v] चौधरी, मृणालिनी। (1998)। *भारत में नारीवाद*। ज़ेड बुक्स।

[vi] गुप्ता, एम. (2001)। *रेडियो क्रांति की नायिका: उषा मेहता*। मुंबई: राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय प्रकाशन।

[vii] फोर्ब्स, जी. (1996)। *आधुनिक भारत में महिलाएं*। न्यू कैम्ब्रिज इतिहास श्रृंखला। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

[viii] गुप्ता, एम. (2001)। *रेडियो क्रांति की नायिका: उषा मेहता*। मुंबई: राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय प्रकाशन।

[ix] भारत सरकार। (1998)। *पद्म पुरस्कार विजेता सूची*। संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार।

[x] चंद्र, बी. (2008)। *भारत का स्वतंत्रता संग्राम*। दिल्ली: वाइकिंग।

[xi] कुमार, राधा। (1993)। *करने का इतिहास: भारत में महिलाओं के अधिकारों और नारीवाद के आंदोलनों का चित्रात्मक विवरण (1800-1990)*।

[xii] धर, सुदीप्त। (2003)। *भगिनी निवेदिता: एक समर्पित जीवन*। कोलकाता: अनुजा पब्लिकेशन्स।

[xiii] सेनगुप्ता, इंद्रानी। (2008)। *भारतीय पुनर्जागरण और भगिनी निवेदिता का योगदान*। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

[xiv] मुखर्जी, मीनाक्षी। (1995)। *भारतीय नारीवाद और उपनिवेशकालीन विमर्श*। हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

[xv] चटर्जी, पार्थ। (2001)। *नेशन एंड इट्स फ्रैगमेंट्स: द कॉलोनियल एंड पोस्टकॉलोनियल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*। कोलकाता: सेज पब्लिकेशन्स।

[xvi] नोबल, एम. एल. (1900)। *काली द मदर*। कोलकाता: इंडियन सोसाइटी फॉर कल्चरल स्टडीज़।

[xvii] नोबल, एम. एल. (निवेदिता, भगिनी)। (1904)। *द वेब ऑफ इंडियन लाइफ*। लंदन: फिशर अंकविन।

[xviii] शर्मा, सावित्री. (2005)। *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिला संगठनों की भूमिका*। नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।

[xix] राव, एन. (2010)। *नारी चेतना और स्वतंत्रता संग्राम*। हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

[xx] देसाई, नेना। (1992)। *विमेन इन इंडिया: ए रिपोर्ट*। नई दिल्ली: मंत्रालय प्रकाशन।

[xxi] लक्ष्मी, आर. (1997)। *महिला आंदोलन और राष्ट्रीय चेतना*। कोलकाता: अनुज्ञा प्रकाशन।

[xxii] भट्टाचार्य, अनिता। (2012)। *नारीवाद और सार्वजनिक नेतृत्व: AIWC की भूमिका*। मुंबई: विमेन स्टडीज़ सेंटर।

[xxiii] शर्मा, राधिका। (2010)। *स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की संगठित भूमिका*। नई दिल्ली: गंगा पब्लिशिंग हाउस।

[xxiv] देसाई, नेना। (1995)। *भारतीय महिला आंदोलन का इतिहास*। नई दिल्ली: त्रिशूल प्रकाशन।

[xxv] सेन, सुमिता। (2007)। *भारतीय महिला संगठनों का उद्भव और विकास*। कोलकाता: साहित्य बुक हाउस।

[xxvi] किश्वर, मणु। (2001)। *भारत में स्त्री नेतृत्व और राजनीतिक भागीदारी*। नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स।

[xxvii] सिंह, रमा। (2008)। *भारतीय समाज और महिला आंदोलन*। इलाहाबाद: शारदा पब्लिकेशन्स।

[xxviii] पांडे, रेखा। (2002)। *भारत में ग्रामीण महिलाओं का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान*। हैदराबाद: ओरिएंट लॉन्गमैन।

[xxix] चावला, अदिति। (2011)। *महिला शिक्षा और सामाजिक क्रांति*। दिल्ली: विमेन स्टडीज़ सेंटर।

[xxx] भारतीय संविधान मंत्रालय। (1996)। *रानी गाइडिन्ल्यू: एक क्रांतिकारी जननायिका*। नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन विभाग।

[xxxi] आर.सी. मजूमदार। (1988)। *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास (खंड 3)*। नई दिल्ली: भारतीय इतिहास अनुसंधान